ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v7.i4.2019.883

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

Arts

हिन्दी सिनेमा पर समग्र दृष्टि

श्रीमती छाया जैन [1]
[1] शोधार्थी – कथक नृत्य विभाग, नृत्य संकाय, इं.क.सं.वि.वि., खैरागढ

मुख्य शब्द – हिन्दी सिनेमा, चित्रकला, नाट्य कला, काव्य कला

Cite This Article: श्रीमती छाया जैन. (2019). "हिन्दी सिनेमा पर समग्र दृष्टि." *International Journal of Research - Granthaalayah*, 7(4), 141-146. https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v7.i4.2019.883.

आज के युग में सिनेमा एक ऐसी विधा है, जिसकी ओर दो साल का एक बच्चा और अस्सी साल का एक बूढ़ा भी आकर्षित है। एक महानगर से लेकर छोटे से कस्बे का व्यक्ति भी इसके सम्मोहन से अछूता नहीं हैं। सिनेमा अपने आप में एक सम्पूर्ण विधा है, क्योंकि इसमें चित्रकला, नाट्य कला, काव्य कला, कथा साहित्य आदि सभी कलाओं का समावेश रहता हैं। आज हम जो सिनेमा देखते है वह हमारे सामने एक विकसित और परिष्कृत रूप है, इसके पीछे एक सदी का परिश्रम है। वर्तमान समय में सिनेमा ने उद्योग रूप ले लिया है परंतु इसने हमें न केवल मनोरंजन ही दिया है, बल्कि शिक्षा भी दी है, इसलिए यह जनमानस की भावनाओं को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम बन गया है। इसलिये यह कहना गलत न होगा कि "फिल्में मनोरंजन का उत्तम माध्यम तो हैं ही, साथ ही वह ज्ञानवर्धन के लिए भी अत्यंत बेहतरीन माध्यम हैं।"

सिनेमा के इतिहास पर एक दृष्टि डाले तो विदित होगा कि किस प्रकार विश्व के वैज्ञानिकों ने दिन–रात कठिन परिश्रम करके इसका अविष्कार किया। पूर्वी जर्मनी का एक गणितज्ञ जब गणित के किसी प्रश्न को हल कर रहा था तब वह कुर्सी पर बैठा था और उसके सामने मेज पर एक लैम्प जल रहा था। सोचते–सोचते उसकी दृष्टि दीवार की ओर गयी, वहाँ उसे अपनी टोपी परछाई दिखाई दी, जिसे देखकर एक घोड़े पर सवार मनुष्य का आभास हुआ। उसे देखकर उस युवक को अचम्भा हुआ और अच्छा भी लगा। वह तेजी से अपना सिर हिलाने लगा, ऐसा लग रहा था कि घुड़सवार भी तेजी से दौड़ रहा है और बस यहीं से, चित्रपट बनाने की कहानी आरम्भ होती है, उसका नाम था "एथनासियस किर्चर"। सन् 1645 में उसने एक लालटेन बनाई, जिसे उसने जादुई–लालटेन कहा। रेखांकित चित्रों को वह इस लालटेन के सम्मुख रखता और उसकी परछाई दीवार पर दिखाता, चित्रपट का प्रथम प्रदर्शन यही था।1

सिनेमा शब्द के पहले 19वीं शताब्दी में सिनेमा शब्द के स्थान पर "किनेमेटोग्राफ" शब्द का प्रयोग किया जाता था, जो युनानी भाषा का एक शब्द है जिसमें "किनेमेटो" का अर्थ है "गति" और "ग्राफ" शब्द का अर्थ हैं आलेख या लिखना इसलिए इस शब्द का प्रयोग गति विज्ञान से लिया गया है। फ्रेंच भाषा में किनेमेटोग्राफ का पर्यायवाची शब्द सिनेमेटोग्राफ है और इस शब्द का संक्षिप्त रूप सिनेमा आज भी प्रचलित है।2

फ्रांस ही पहला देश है जहाँ के देशवासियों को सबसे पहले सिनेमा देखने का अवसर मिला और 28 दिसम्बर 1895 को ल्यूमिएर ब्रदर्स ने एक मिनिट तक सिनेमा के कुछ टुकड़े दर्शकों को दिखाये। भारत में सिनेमा

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
DOI: 10.5281/zenodo.2653800

पहुँचने में केवल 6 महीने लगे, ल्यूमियर बंधुओं के प्रतिनिधि, घुमन्तु बायस स्कोप के रुप में सिनेमा को बम्बई लाये।3

15 अप्रैल 1911 का दिन एक ऐतिहासिक दिन था, क्योंकि इस दिन दादा साहब फाल्के ने बम्बई में अमेरिका इंडिया सिनेमा नाम के सिनेमाघर में "लाइफ ऑफ क्राईस्ट" फिल्म देखी और ठान लिया कि भारत में फिल्म बनाना है।4 फरवरी 1912 को दादा साहब फाल्के इंग्लैंड गये और वहाँ उन्होंने सिनेमा निर्माण कला का गहराई से अध्यन किया। दादा साहब फाल्के वहाँ से कैमरा प्रिंटिग मशीन लेकर भारत आये और सितम्बर 1912 में भारत की फिल्म राजा हरिश्चंद्र का निर्माण कर दिया। आठ महीनों तक बहुत कठिनाइयाँ का सामना करते हुए दिनांक 21 अप्रैल 1913 को इस फिल्म का ओलम्पिया थियेटर में विशेष प्रदर्शन हुआ, जिसमें देश के बड़े—बड़े उद्योगपति, वकील तथा जज इत्यादि उपस्थित थे। इस प्रकार दादा साहब फाल्के की क्रांति ने युग परिवर्तन कर दिया।

भारतीय सिनेमा के इतिहास को दो युगों में बांटा गया है, पहला मूक सिनेमा युग सन् 1913 से 1934 तक तथा दूसरा सवाक सिनेमा युग सन् 1931 से अभी तक।5

मूक सिनेमा युग

1970 तक दादा साहब फाल्के एकमात्र सिनेमा निर्माता थे, जिन्होंने 23 से भी अधिक फिल्मों का निर्माण किया तथा सभी फिल्मों के विषय पौराणिक कथा साहित्य से ही चुने, ताकि आम दर्शक इन फिल्मों के चरित्रों को सरलता से पहचान सकें और इन फिल्मों को सभी धर्मों के लोग देखें। सिनेमा के इतिहास में तीसरा दशक बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस दशक में सिनेमा उद्योग का रूप धारण कर चुका था।6

सवाक युग

प्रथम भारतीय सवाक हिंदी फिल्म "आलम आरा" थी, जिसे फिल्म निर्माण संस्था इम्पिरियल कम्पनी ने 1931 में बनाया था, इसके निर्माता अर्देशिल ईरानी थे।

इस फिल्म का प्रदर्शन 14 मार्च 1931 को "मैजेस्टिक सिनेमाघर" बम्बई में किया गया था।7 इस फिल्म के निर्माण की सबसे बड़ी विशेषता यह थी, कि इसके निर्माण में किसी विदेशी तकनीशियन की सहायता नहीं ली गई थी। इस फिल्म में मास्टर विट्ठल जूवेदा ने अभिनय किया था।8 सवाक फिल्मों के आने के बाद, धीरे—धीरे मूक फिल्मों का आकर्षण हट गया और अंत में मूक सिनेमा युग की बिदाई हो गई।

हिंदी सिनेमा में संगीत

मनुष्य का जीवन गीत—संगीत के बिना अधूरा है, खुशी के क्षणों में भी मनुष्य गीत गुनगुनाता है और दुःख के क्षणों में भी संगीत उसका मन बहलाता है। विश्व में अनेक प्रकार का संगीत विद्यमान है परंतु भारतीय संगीत की अपनी बात ही निराली है। भारत में लोक संगीत, सुगम संगीत तथा शास्त्रीय संगीत, ये तीनों विशेष तौर पर प्रचलित हैं। लोक संगीत अर्थात् किसी विशेष क्षेत्र में प्रचलित संगीत, जो जन साधारण की भावनाओं को सरलता से अभिव्यक्त करने वाला होता है और इसमें किसी भी प्रकार की कृत्रिमता नहीं रहती है। सुगम संगीत भी जन साधारण का संगीत है परंतु इसमें शहर और गाँव का कोई भेद नहीं है, इसलिए इसकी कोई भाषा या कोई विशेष क्षेत्र नहीं होता। लोक संगीत में जहाँ सादगी होती है वहीं सुगम संगीत में विभिन्न सौंदर्यपूर्ण अलंकरणों का प्रयोग किया जाता हैं। शास्त्रीय संगीत विधा एक विशिष्ट वर्ग के लिए रही है, इसलिए इसे अभीजात संगीत भी कहते हैं।

 ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
DOI: 10.5281/zenodo.2653800

आधुनिक समय में संगीत के तीनों प्रकारों को मिलाकर एक नया संगीत तैयार हुआ है, जिसे चित्रपट या फिल्मी संगीत कहते हैं। चित्रपट संगीत ने हमारे देश में जैसा तहलका मचाया हुआ है, उसकी मिसाल विश्व में कहीं नहीं मिलती है। चित्रपट संगीत ने ज़िंदगी के उतार–चढ़ाव से परेशान, मायूस एक आम इंसान को भी भावना और कल्पना के समुद्र में डुबकियाँ लगाना सिखाया। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि फिल्मी संगीत ही है, जिसने शास्त्रीय संगीत को जनसाधारण तक पहुँचाया। बैजू–बावरा, वसंत बहार, झनक झनक पायल बाजे आदि फिल्मों के शास्त्रीय संगीत के गीतों ने जनसाधारण के मन को प्रभावित किया हैं। इसके पहले शास्त्रीय संगीत एक विशेष वर्ग पर ही अपनी गायिकी का असर छोड़ पाते थे। फिल्मों में जितना महत्त्व कथावस्तु का है उतना ही महत्त्व संगीत का भी हैं, फिल्मों में यह महत्त्व दो प्रकारों से प्रभाव डालता है, पहला प्रत्यक्ष रूप से और दूसरा अप्रत्यक्ष रूप से। प्रत्यक्ष रूप से आने वाला संगीत फिल्मों के गीत के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है एवं जो परदे पर नायक–नायिका पर फिल्माया जाता है, जिसे वे अपने अभिनय से और अधिक प्रभावपूर्ण बना देते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से आने वाला संगीत किसी प्रसंग विशेष के भाव या स्थिति को प्रकट करने के लिए होता है, जैसे – अंधेरी रात का सन्नाटा दर्शाने के लिए किन्हीं विशेष वाद्य यंत्रों का प्रयोग करना।

हिन्दी फिल्मों के इतिहास पर नज़र डालें, तो ज्ञात होता है कि जिन फिल्मों में शास्त्रीयता पर आधारित गीत–संगीत का प्रयोग किया गया, उन्हें बहुत प्रशंसा प्राप्त हुई और उनके सभी संगतकारों को आम जनता में विशेष नाम मिला। विशेषकर वर्ष 1940 से वर्ष 1962 तक के फिल्मों के गीत संगीत शास्त्रीय संगीत पर ही आधारित है जैसे– बैजू–बावरा, झनक–झनक पायल बाजे, गूँज उठी शहनाई, मुग़ले–ए–आज़म, संगीत सम्राट तानसेन इत्यादि।

1962 के बाद फिल्मी संगीत में परिवर्तन आने लगा, शास्त्रीय संगीत के साथ–साथ सुगम संगीत का भी प्रयोग अधिक होने लगा, फिल्मों में शास्त्रीय संगीत का प्रयोग वहीं तक किया जाने लगा जहाँ तक फिल्म के दृश्य की आवश्यकता होती।

जब 70–80 के दशक में जब फिल्मी संगीत कम और शोर–शराबा ज्यादा होने लगा तब कुछ फिल्म निर्माताओं ने अच्छी फिल्मों का निर्माण करने की ठानी और कुछ संगीतकारों ने शास्त्रीय संगीत का आधार देकर फिल्मी गीतों को नया जीवन दिया जैसे– आलाप, सुरसंगम, लेकिन, शबाब, मेरी सूरत तेरी आँखें, अनुराधा इत्यादि फिल्में इसका सबसे अच्छा उदाहण हैं।

हिन्दी फिल्मों के गीत संगीत का इतिहास केवल परिवर्तन का इतिहास नहीं बल्कि पतन का इतिहास भी है। अतीत से निकल कर जब दृष्टि भविष्य की ओर जाती है तो गीतों की मधुरता और अक्षर न जाने कहाँ खो जाते हैं, आज के गीतों में वह मिठास, वह दर्द और पवित्र प्रेम देखने को नहीं मिलता। आज वासना (अंग प्रदर्शन), मांसलता और अर्थहीन शब्दयुक्त गीतों ने संगीत को शोरगुल में बदल दिया है।

फिल्मों में नृत्य परम्परा

जैसे–जैसे मूक सिनेमा का युग जवान होता गया, उस युग में बनी ख़ामोश फिल्मों में नृत्य की बहार भी अपना रंग भरने लगी। मूक फिल्मों के अंतिम दौर में एक फिल्म आई जो नर्तकियों के जीवन कथा पर आधारित थी, वह थी नवल गांधी द्वारा निर्देशत "देवदासी", जिसकी अभिनेत्री जुबेदा थी। जैसे ही सवाक सिनेमा आया पहली बोलती फिल्म "आलम आरा" में अभिनेत्री रूबी मेयर्स (सुलोचना) का पूरा नृत्य दृश्य प्रस्तुत किया गया।9 वस्तुतः भारतीय सिनेमा बोलना नहीं जानता था नृत्य तब भी उसके साथ चल रहा था और यह सिलसिला आज भी चला आ रहा है।

 ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
DOI: 10.5281/zenodo.2653800

सिनेमा के विकास के साथ साथ अलग–अलग प्रांतों के संगीतकार और नृत्य निर्देशक फिल्मों से जुड़ने लगे तो वो अपने प्रदेशों का रंग संगीत–नृत्यों में भरने लगे, इस प्रकार फिल्मों में जहाँ ओरियंट्ल डांस, नाट्य नृत्य, मणिपुरी, भरतनाट्यम्, कथकली और कथक शैलीयों का प्रयोग कहानी की माँग के अनुसार होता था, वहीं अलग–अलग प्रांतों के रंग भी दिखाई देने लगे। शास्त्रीय नृत्यों में निपुण कुछ अभिनेत्रियाँ फिल्मों में आने लगी तो ऐसे नृत्यों की मांग बढ़ गई, इस वर्ग की अभिनेत्रियों में वैजयंतीमाला, वहीदा रहमान, पदमिनी रागिनी, आशा पारेख, हेमा मालिनी, जयप्रदा, सुधाचंद्रन आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार के नृत्यों को उदय शंकर जी ने "फिल्मी शास्त्रीय नृत्य" नाम दिया।10

उपशास्त्रीय, लोकधुन और फिर प्रयोगवादी शैली में नृत्य के लिए जिन अभिनेत्रियों के नाम लिए जाते हैं उनमें से प्रमुख है, हेलन, कुकक्, मीनू मुमताज, जयश्री टी. आदि। ये अभिनेत्रियाँ हर प्रकार के नृत्य सहजता एवं सुंदरता से कर सकती थीं। सिनेमा में नृत्य की बात होती है तो नृत्य निर्देशकों के नाम आना स्वाभाविक ही है। सिनेमा के इन 100 सालों में से सभी नृत्य निर्देशकों का लेखा–जोखा देना तो कठिन है, लेकिन कुछ महत्त्वपूर्ण नृत्य निर्देशकों के नाम इस प्रकार हैं– उदय शंकर, बद्री प्रसाद, सोहनलाल, हीरालाल, सूर्य कुमार, कृष्ण कुमार, मैडम सिप्पी, गुरु दत्त, के.के.शेट्टी, लच्छू महाराज, कुमुदनी लाख्या, बिरजू महाराज, गौरी शंकर, रोशन कुमारी, जयपाल, हजारी प्रसाद, आशिक हुसैन उर्फ भूरे ख़ाँ और राबर्ट, तारादेवी, सितारादेवी, अलकनंदा और गोपीकृष्ण फिर बाद में कमल मास्टर, राज, माधव व सुरेश, के.एन.दंडायुथपाणी, सहगल, प्रेमवर्धन (दो बीघा जमीन), सचिन शंकर, योगेंद्र देसाई, चेतन कुमार, विनोद चोपडा, मास्टर कुंदन लाल, पं.ज्ञानशंकर, लक्ष्मीशंकर, के.एस.मोरे, रेखा चिन्नीप्रकाश, सरोजखान, फरहा खान, रेमो डिसूजा, टेरेंस लुईस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सिनेमा के 100 सालों में कुछ नृत्य प्रधान फिल्में ऐसी आयीं जिसने बहुत प्रसिद्धि पाई, जैसे– राजनर्तकी (1939), चित्रलेखा (1941), कल्पना (1948), झनक झनक पायल बाजे (1955), चंद्रलेखा (1948), नवरंग (1955), स्वर्ण सुंदरी, नर्तकी इत्यादि।

पाश्चात्य संगीत एवं नृत्यकला

सिनेमा इतना विशाल और विस्तृत माध्यम है जिसमें सभी प्रकार की कलाएँ अपने आप में समाहित करने की क्षमता और सामर्थ्य है। समय परिवर्तनशील है जो मनुष्य के जीवन के कई पहलूओं पर प्रभाव डालता है, जो आज वर्तमान है कल वह अतीत हो जाता है। अंग्रेजों ने 100 वर्ष हम पर राज किया उनकी पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव हमारे खान–पान, रहन–सहन पर पड़ा, तो फिल्मी जगत उससे अछूता कैसे रहता। आधुनिक भारतीय संगीत में कई पाश्चात्य वाद्यों का प्रचार बढ़ा, जिनमें से कुछ वाद्य तो भारतीय शास्त्रीय संगीत में अपना प्रमुख स्थान बना चुके हैं, जैसे– वायलिन, हारमोनियम, गिटार आदि। "इलेक्ट्रानिक साजो के आ जाने से पाश्चात्य संगीत के प्रभावों से रिदम भी दिन–प्रतिदिन तेज होती जा रही है।

पाश्चात्य संगीत का प्रारम्भिक दौर की बोलती फिल्मों से ही शुरू हो गया था, सबसे पहले सन् 1933 में प्रदर्शित "पूरन भगत" फिल्म में ऑर्केस्ट्रा की शुरुआत की गई और इसके संगीतकार वायचन्द्र वोराल थे, उन दिनों में बहुत से देशी और विदेशी साजो को एकत्रित करके भारतीय फिल्म संगीत में ऑर्केस्ट्रा को संजोया गया। फिल्मों में पाश्चात्य फिल्मों का प्रभाव लगभग सन् 1945 के आसपास अधिक दिखाई देने लगा, सी. रामचन्द्र ने फिल्मों में पाश्चात्य ढंग की हल्की–फुल्की धुने दी। 1958 में फिल्म हावडा ब्रिज में ओ.पी.नैय्यर ने संगीत दिया, जिसका एक गीत मेरा नाम चिनचिन चू भी, रॉक–एन–रोल प्रकार का ही है। इसी क्रम को शंकर जयकिशन ने भी बहुत आगे बढ़ाया, उनका सबसे प्रिय वाद्य रहा। प्यानो–अकॉर्डियन उसके बाद आर. डी. वर्मन ने तो पाश्चात्य संगीत का ऐसा मिश्रण प्रस्तुत किया, कि आज भारतीय सिनेमा में शास्त्रीय संगीत का यदा–कदा ही प्रयोग होता है।11

पाश्चात्य संगीत के प्रभाव ने नृत्य शैली पर भी अपना प्रभाव डाला, जैसे– श्री रामचन्द्र ने रम्भा शम्भा और ओ.पी. नैय्यर ने रॉक–ए–रोल का संगीत दिया तो नृत्य निर्देशक को भी तो इन्हीं धुनों पर डांस कराना था।

 ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
DOI: 10.5281/zenodo.2653800

इस प्रकार पाश्चात्य नृत्य ने अपने आप ही फिल्मों में अपनी जगह बना ली। आर.डी.वर्मन ने 'टिवस्ट' को प्रचलित किया, बप्पी लहरी ने डिस्को डांस पर धुनें बनाकर दर्शकों को खूब नचाया। पाश्चात्य संगीत के लिए आशा भोसले की आवाज में ऐसी मदकता थी कि ऐसा महसूस होता था मानो हेलन डांस भी कर रही है और गा भी रही है।

आर.डी.वर्मन ने ऐसी ऐसी पाश्चात्य धुनें दी कि फिल्मी दुनिया अब कभी भी पाश्चात्य संगीत और नृत्य से मुक्त नहीं हो सकते। आज रॉक–एन–रोल न जाने कहा खो गये हैं और उनकी जगह जाज, साल्सा, कन्टेम्परी, टेंगो, हिप–हॉप आदि ने ले ली।

सिनेमा पर समग्र दृष्टि डालने पर यह सार निकलता है, कि सिनेमा एक अत्यंत शक्तिशाली विधा है, जनसंख्या के एक बहुत बड़े वर्ग तक किसी संदेश को पहुँचाने के लिए कोई भी दूसरी विधा इतनी शक्तिशाली नहीं थी। सिनेमा ने अपनी बनावट मे रंग–मंच, साहित्य, संगीत, चित्रकला आदि सभी रचनात्मक कलाओं को बड़ी चतुराई और कुशलता से समेट लिया। सिनेमा अब सौ साल पुरानी एक लोकप्रिय और सशक्त विधा है, इन सौ सालों में इस विधा में अनेक परिवर्तन हुए हैं। उदाहरण के लिए धीरे–धीरे सिनेमा में जाने वाले दर्शकों की संख्या कम होती चली गई है अनेक सिनेमाघर बंद हो गये हैं उनकी जगह मल्टीप्लेक्स जैसे पी.वी.आर, आइनोक्स आदि ने ले ली है। पहले फिल्में रजतजयंती, स्वर्णजयंती मनाया करती थीं और स्वर्ण जयंती मनाने वाली फिल्म ही सबसे सफल मानी जाती थीं। आज फिल्मों की सफलता का मूल्यांकन इस बात से होता है, कि उसने एक सप्ताह में कितने करोड़ का व्यवसाय किया। पहले एक ही फिल्म को अनगिनत बार देखने वाले दर्शकों की संख्या बहुत थी आज के दर्शक पहले यूट्यूब, टेलिविजन, समाचार पत्रों आदि में फिल्म की समीक्षा पढ़ने एवं देखने के बाद ही फिल्म थियेटर में देखने जाते हैं।

टेलिविजन और सेटेलाईट ने भी सिनेमा के दर्शकों पर भी अपना प्रभाव डाला है, हालांकि पिछले कुछ सालों में फिल्म निर्माताओं ने बडे पर्दे को अधिक लुभावना बनाने की कोशिश की हैं और सत्तर एम.एम के पर्दे, डिजिटल साउंड वाले गानों की भव्य फिल्मांकन से दर्शकों को छोटे पर्दे के मनोरंजन से बाहर लाने की कोशिश की है। इसका सबसे बडा उदाहरण बाहुबली फिल्म है, जिसके भव्य सेटों ने दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित किया।

यह कहने में कहीं भी संकोच नहीं है, कि सिनेमा विधा, साहित्य रचना की तरह रचनात्मक कार्य नहीं है, साहित्य रचना में बिना किसी खास लागत के आप अपनी बात पाठकों तक पहुँचा सकते हैं, इसलिए साहित्य को मनोरंजक बनाना साहित्यकार की मजबूरी नहीं होती। सिनेमा में मनोरंजन और ज्ञानवर्धन दोनों काम एक साथ करना मुश्किल है। हॉलीवुड की चार्ली–चेपलिन हो या बॉलीवुड के राज कपूर हों, सभी ने अपने अपने ढंग से इस कठिन मेल को स्वीकार्य किया।

लेकिन स्थिति में बड़ा निर्णायक परिवर्तन आया। 40 के दशक की शुरुआत से जब महबूब खान ने 'रोटी और औरत' जैसी शक्तिशाली फिल्में बनाई थीं, बाद में पचास के दशक में महबूब ने 1951 की औरत को 'मदर इंडिया' के रूप में बनाया तो उनकी प्रस्तुति और केनवास बदल गया। अब मदर इंडिया एक समाजिक फिल्म नहीं थी बल्कि एक रंगीन मसाला फिल्म थी, जिसमें गीत–संगीत, नाच–गाना सभी कुछ था। इसी प्रकार व्ही. शांताराम, राजकपूर आदि फिल्मकारों ने अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के स्वरूप को बदला। एक दो अपवाद छोड़ दिये जायें, तो हिन्दी सिनेमा के तथा कथित स्वर्णयुग या पचास के दशक में व्यापार, कला पक्ष समाजिक पक्ष तीनों में एक अद्वितीय संतुलन स्थापित हुआ। आज फिल्मों में समाजिक भूमिका गायब तो नहीं हुई है परंतु गलाकाट प्रतियोगिता के युग में एक महंगे निर्माण तंत्र में उद्देश्य पूर्ण फिल्मों को बनाना एक असम्भव कार्य हो गया है। 60 के दशक के बाद मुख्य धारा की सिनेमा में धीरे–धीरे समाजिक उद्देश्य कम होते चले गये या सतही पूरी तरह से फिल्मी रूप सामने आने लगा फिल्में रंगीन हुई, हिंसक हुई, एक्शन प्रधान हुई, मानवीय संवेदनाएँ उनमें से गायब होती चली गई। 1973 में प्रकाश मेहरा की फिल्म जंजीर सफल हुई। उसके

 ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
DOI: 10.5281/zenodo.2653800

बाद हिंदी व्यवसायिक सिनेमा की जंजीरें सुपर स्टार अमिताभ बच्चन के हाथ में थी। अमिताभ बच्चन ने एक ऐसे नायक की भूमिका निभाई जो खलनायक होते हुये भी फिल्म की जान होता था। उसके बाद 80 और 90 के दशक में वी.सी. आर. और कैसेट ने सिनेमाघरों को फिर खाली कर दिया। 21वीं सदी के प्रारंभ में मॉल संस्कृति ने पी.व्ही.आर. सिनेमा को जन्म दिया, जिसने युवा वर्ग को अपना दिवाना बनाया। वर्तमान में भी सिनेमा में सामाजिक समस्याओं को लेकर अच्छी फिल्मों का निर्माण निर्माता एवं निर्देशकों ने किया है। अमीर खान एक ऐसे अभिनेता हैं, जिन्होंने फिल्मों को केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं माना बल्कि समाज की समस्याओं और उसका समाधान भी अपनी फिल्मों में प्रदर्शित किया हैं, जैसे– "तारे ज़मीं पर" एक बाल मनोविज्ञान पर आधार फिल्म है। वैसे ही दंगल फिल्म भारतीय समाज की मूल समस्या महिला सशक्तिकरण पर संदेश समाज को देती है। इसी प्रकर संजय लीला भंसाली ने शारीरिक रूप से विकलांग बच्चों के सामने आने वाली चुनौतियाँ को बड़ी सुंदरता से ब्लैक फिल्म में दर्शाया है, जिसे अमिताभ बच्चन एवं रानी मुखर्जी ने अपने अभिनय कौशल से सजीव कर दिया। इसी प्रकार शाहरुख खान अभिनीत गुरुओं की महिमा को रेखांकित करती हुई फिल्म "चक दे इंडिया" ने समाज को यह संदेश दिया कि समाज में प्रतिभाओं की कमी नहीं होती, बस उन्हें एक सही दिशा देने वाला गुरु या शिक्षक होना चाहिए। आज तो सिनेमा का आकर्षण इतना बढ़ गया है, कि प्रचार माध्यम के रूप में सिनेमा को एक शक्तिशाली माध्यम समझा जा रहा हैं और तरह तरह के विज्ञापन भी हो रहे हैं। आधुनिक समय में तनाव, कुंठा एवं अलगाव और सम्बधों में परस्पर कटुता का वातावरण पनपता ही जा रहा, तो व्यक्ति एक ऐसे माध्यम की तलाश करता है जहाँ वह इन परेशानियों से मुक्त हो सके और सिनेमा ने बहुत हद तक, मनोरंजन के साथ–साथ इस रूप में आदमी तक पहुँचने की कोशिश भी की है।

सन्दर्भ सूची–

[1] कुमार राकेश, कहानी सिनेमा के जन्म की, नवभारत टाईम्स, 14 अक्टूबर, 1984.
[2] A new English dictionary on Historical principles editing by james A-H- murray-Vol.IV. F and G. Pg. 359 Clarendon press, 4th edition, 1901.
[3] डॉ. विमल, हिन्दी चित्रपट एवं संगीत का इतिहास, 2010, पृ.6
[4] फिरोज रंगूनवाला, भारतीय चित्रपट का इतिहास, 1975, पृ.09
[5] फिरोज रंगूनवाला, भारतीय चित्रपट का इतिहास, 1975, पृ.10
[6] डॉ. विमल, हिंदी चित्रपट एवं संगीत का इतिहास, 2010, पृ.8
[7] बच्चन श्रीवास्तव, भारतीय फिल्मों की कहानी, पृ.40
[8] फिल्म फेयर पत्रिका, 8मार्च, 1963, पृ.31
[9] वाहिद काजमी, फिल्म संगीत का इतिहास अंक, जनवरी–फरवरी, 1998, पृ.41
[10] वाहिद काजमी, फिल्म संगीत का इतिहास अंक, जनवरी–फरवरी, 1998, पृ.41
[11] डॉ.शर्मा "सौरभ", भारतीय फिल्म–संगीत में ताल समन्वय, 2006, पृ.27

*Corresponding author.
E-mail address: chhaya_kathak05@ yahoo.com